

उस दौर में वे लड़े थे

शंभुनाथ

21वीं सदी में भी हमारी बौद्धिक बहस की टांग 19वीं सदी में फंसी है। यह बेवजह नहीं है। हम वर्तमान समय में एक ऐसे वैचारिक धुंधलके में हैं, जिसमें भविष्य-चिंता के साथ अतीत की परंपराओं का भी गड्ढमड्ढ दिखना स्वाभाविक है।

ओम थानवी ने 'उस दौर में' में रामचंद्र शुक्ल की विवेचना की है और मूलतः यही कहना चाहा है कि हिंदी का धर्मनिरपेक्ष रूप ही विकसित किया जाना चाहिए। इसके लिए यह जरूरी नहीं है कि रामचंद्र शुक्ल को 19वीं सदी के नवजागरण के ऐतिहासिक विकास में न देखकर उन पर हिंदू कट्टरवाद का रबड़ स्टैप ठोक दिया जाए। दरअसल उनके बारे में यह कहना कि 'वे हिंदी के पहले आलोचक हैं और अंतिम भी' और यह कहना कि 'उन्होंने हिंदी को हिंदू पहचान दी' - दोनों कथन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक में स्वाभाविक कारणों से बाद के आलोचकों के योगदान का निषेध है, दूसरे में खुद रामचंद्र शुक्ल के विस्तृत योगदान का। दोनों ही अतिवाद हैं। इसमें संदेह नहीं कि हमें परंपरा से अपने रिश्तों को बार-बार जांचना-समझना होता है, पर यह काम विकासशील परंपरा-विवेक से ही संपन्न हो सकता है।

हम मनःस्थिति को परिस्थिति से अलग करके नहीं देख सकते। एक बार रामचंद्र शुक्ल के पिता ने उसका परिचय एक उर्दू-प्रेमी सब जज से कराते हुए कहा, 'इन्हें हिंदी का बड़ा शौक है।' सब जज ने कहा, 'आपको बतलाने की जरूरत नहीं। मैं इनकी सूरत देखते ही इस बात से वाकिफ हो गया था।' एक वक्त उर्दू-फारसी और इनसे जुड़े तत्पुगीन अभिजात्यवादी हिंदुओं-मुसलिमों का समाज पर अंग्रेजीदां लोगों जैसा बड़ा दबदबा था। हिंदी उपेक्षित भाषा थी। ऐसे दौर में भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी और रामचंद्र शुक्ल हिंदी की स्वतंत्र आत्मपहचान के लिए संघर्ष करते हैं।

प्रेमचंद की रानी सारंधा, राजा हरदौल, पिसनहारी का कुआं कहानियां पढ़ें, वे सांप्रदायिक और अंधविश्वासी नजर आएंगे। निराला की 'जागो फिर एक बार' और उनका कथन 'पश्चिम की उक्ति नहीं गीता है/स्मरण करो बार-बार' उनको हिंदुत्ववादी ही नहीं मनुवादी भी बना देगा। प्रसाद की 'कामायनी' में शैवदर्शन और शिव पाकर कोई कहेगा कि अलग धर्मों के पाठकों को यह महाकाव्य नहीं पढ़ाना चाहिए। इस पद्धति से परंपरा को छानते-खंगालते आज तक पहुंचने पर हम अंततः इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि चालीस करोड़ की आबादी में बस हम खुद सौ-पचास बुद्धिजीवी ही खांटी सेकुलर हैं, बाकी सबमें हिंदुत्व भरा है।

वह ऐतिहासिक संक्रमण का दौर था। उपर्युक्त सभी हिंदू-लेखक आधुनिकता की परियोजनाओं में शामिल रहने के साथ किसी न किसी बिंदु पर अपने पुराने सांस्कृतिक संस्कारों से लड़ रहे थे और उनका अतिक्रमण कर रहे थे। वे न आधुनिकता की परियोजनाओं में पूरी तरह शामिल हो पाए थे और न पुराने धार्मिक-सांस्कृतिक संस्कारों से पूरी तरह जकड़े थे। अतः पुराने सोच के अवशेष स्वाभाविक हैं। आजादी से पहले के किसी लेखक से यदि हम इतनी निकटता का अनुभव करते हैं कि उससे चिपक जाते हैं या इतने दूरत्व का अनुभव करते हैं कि लाठी भांजने लगते हैं- दोनों मामलों में हमारे सामने गलत निष्कर्ष तक पहुंचने के खतरे मौजूद रहते हैं।

रामचंद्र शुक्ल के दौर में बहुत से उर्दूदां हिंदू थे, जो हिंदी का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकारने के लिए तैयार नहीं थे। क्रांतिकारी इतिहासकार सुंदरलाल कहते थे, 'हिंदी प्रचार की तहरीक हिंदू-मुसलमान एक्टलाफात की बहुत बड़ी वजह है। एक सदी पहले हिंदुस्तान की सिर्फ एक ही कौमी जुबान थी- यानी उर्दू।' 19वीं सदी में कुछ ऐसा था कि शिक्षित हिंदू लोग अरबी-फारसी की तरफ लगातार अधिक बढ़ रहे थे। दूसरी तरफ उर्दू वाले ब्रज और खड़ी बोली हिंदी से लगातार दूर हट रहे थे। अंग्रेजों ने फूट डालो की पृथक्तावादी नीति चला रखी थी।

अपने एक आरंभिक लेख में रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, 'हम हिंदू हैं, हिंदुस्तान हमारा देश है, हिंदी हमारी भाषा है।' दूसरी तरफ यह भी देखें कि उन्होंने भाषा का रिश्ता महजब से न जोड़ते हुए हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर, जायसी आदि को अपनी बौद्धिक सीमाओं में जगह दी। यह बिल्कुल संभव है कि कोई लेखक एक जगह अपने पुरातन सोच या संस्कार से बंधा हो। दूसरी जगह वह नई ऐतिहासिक स्थितियों के असर में उसका अतिक्रमण करे। रामचंद्र शुक्ल जब 'हाय पंचनद हा पानीपत' कह रहे थे, उनका अभिप्राय मानवीय भावजगत को एकायामिता से मुक्त करके उसे बहुलता प्रदान करना था। उनके प्रकृति और भाव-मनोविकार पर केंद्रित लेखों का उद्देश्य यही था। क्या आज पुनः उपभोक्ता समाज में भाव की बहुलता खो नहीं रही है, यह समाज एकायामी और महज यौनिक नहीं होता जा रहा है?

रामचंद्र शुक्ल हिंदी को संस्कृत के अप्रचलित शब्दों से भर देने या अरबी-फारसी के चालू शब्दों से खाली कर देने का सोच नहीं रखते थे। वे उर्दू को आदर देते थे। वे 'मुसलमान भाइयों' के मन की आशंकाओं को दूर करने के उद्देश्य से लिखते हैं, 'यदि वे अपनी भाषा और अपने साहित्य की एक अलग परंपरा रखना चाहते हैं तो हमारे लिए यह प्रसन्नता की बात है। इधर अपनी भाषा की छटा, अपने साहित्य की विभूति हमारे सामने रहेगी, उधर उनके साहित्य के चमत्कार से भी हम अपना मनोरंजन करेंगे। यही मौका उन्हें भी रहेगा। मनोरंजन के क्षेत्र एक से दो रहें तो और अच्छी बात है।' राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद से लेकर आज तक ऐसे विद्वानों और शिक्षाविदों की कमी नहीं है, जो दो भाषाओं के स्वतंत्र अस्तित्व की धारणा को मिटाकर एक भाषा की बात करते हैं और भाषाओं के संसार में

एकाधिकारवाद के हिमायती हैं। वे उर्दू और हिंदी की लिपि भी एक करने की बात करते हैं। हम देख सकते हैं कि रामचंद्र शुक्ल का दृष्टिकोण कितना जनतांत्रिक, समावेशी और पारस्परिकता-भरा है।

निश्चय ही तत्समबहुलता और तत्समीकरण एक चीज नहीं हैं। ऐसा नहीं है कि आचार्य शुक्ल हिंदी में मिश्रण नहीं चाहते। हिंदी सैकड़ों वर्षों से एक मिश्रणशील भाषा रही है। दुनिया की कोई भाषा हिंदी के जितनी मिश्रणशील और विविधता-भरी नहीं है। आज हिंदी में अंग्रेजी के शब्दों का मिश्रण हो रहा है। रामचंद्र शुक्ल का कथन नए संदर्भ में भी महत्वपूर्ण है, 'भाषा या साहित्य के विशिष्ट रूप प्राप्त करने का यह अभिप्राय नहीं है कि उसमें बाहर से आए हुए नए शब्द, नई-नई वस्तुएं न मिलें। उसमें नए-नए शब्द भी बराबर मिलते जाते हैं और नए-नए अर्थों और वस्तुओं की योजना भी होती जाती है, पर इस यात्रा और ढब से कि उसका स्वरूप अपनी विशिष्टता बनाए रखता है।' हमें भूलना न होगा कि आज हिंदी में उर्दू, अन्य भारतीय भाषाओं और लोकभाषाओं के शब्दों के मिश्रण का प्रवाह रुक-सा गया है। हिंदी में सिर्फ अंग्रेजी मिश्रित हो रही है। हिंदी की विशिष्टता की कीमत पर यह मिलावट हो रही है- यह भले काफी समय तक चलने वाली चीज नहीं है।

कहने का अर्थ है कि किसी भाषा की अस्तित्व रक्षा के लिए मिश्रणशीलता के साथ विशिष्टता भी एक प्रमुख तत्त्व है। रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी को एक व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखना चाहा था, 'साहित्य की जो देश में व्यापक परंपरा बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रांतों में चली आ रही है, वही परंपरा तो हिंदी की भी है- अर्थ परंपरा और शब्द परंपरा भी।' यह एक अद्भुत सोच है कि बांग्ला-मराठी में तत्सम शब्द अधिक हो जाएं तो कम्युनल नहीं, हिंदी में हो जाएं तो कम्युनल।

हमारे कवि प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी, अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि उस भाषा में कविता लिख ही नहीं सकते थे, जिस भाषा की वकालत गांधी कर रहे थे। गांधी 'हिंदुस्तानी' की वकालत राष्ट्र भाषा और संपर्क भाषा के रूप में कर रहे थे न कि साहित्य की भाषा के रूप में? राजनीतिज्ञ साहित्य की भाषा तय नहीं कर सकते थे। सांप्रदायिक एकता के संदर्भ में जिस 'हिंदुस्तानी' की अभिनव परिकल्पना राष्ट्रीयता के कारखाने में गढ़ी जा रही थी, वह एक भावना ही अधिक थी। उसके साथ ऐसी विचित्र सूझें भी थीं कि हिंदुस्तानी की लिपि रोमन हो। हो सकता है, इंटरनेट के युग में वह सूझ कुछ हद तक वास्तविक रूप धारण करने जा रही हो। खैर लिपियों का रोमनीकरण एक वैश्विक संकट है।

रामचंद्र शुक्ल भी हिंदी का 'उचित पथ' वही समझते थे, जो प्रेमचंद, निराला आदि। जरा देखिए, वे हिंदी के तत्समीकरण और फारसीकरण का विरोध कैसे करते हैं, "आजकल हिंदी की अवस्था कुछ विलक्षण हो रही है। उचित पथ के सिवाय तीन और मार्ग खोले गए हैं- एक, जिसमें बिना किसी विचार के संस्कृत के शब्द और समास बिछाए जाते हैं। दूसरा, जिसको उर्दू कहना चाहिए। इनके अतिरिक्त एक तृतीय पथ

भी खुल रहा है, जिसमें अप्रचलित अरबी, फारसी और संस्कृत शब्द एक पंक्ति में बैठाए जाते हैं।’ (अपनी भाषा पर विचार)। रामचंद्र शुक्ल संस्कृत का झंडा लेकर नहीं चल रहे थे।

हम देख सकते हैं कि उस जमाने के हिंदू मन में कठमुल्लेपन और कट्टरता से उबर कर एक उदारवाद पनपना शुरू हो चुका था। रामचंद्र शुक्ल साहित्य का संबंध जनता की चित्तवृत्ति से बिठाते हैं, हिंदू चित्तवृत्ति से नहीं। वे मानते हैं कि जनता की चित्तवृत्ति परिवर्तनशील है। रामचंद्र शुक्ल ‘हिंदुस्तानी’ के बारे में लिखते हैं- ‘साधारण लिखा-पढ़ी, अदालती व्यवहार तथा बोलचाल के लिए यदि एक सच्ची सामान्य भाषा हिंदुस्तानी के नाम से ग्रहण कर ली जाए तो कोई हर्ज नहीं।’ (उर्दू राष्ट्रभाषा)। वे साफ कहते हैं कि हिंदी में जरूर, काबू, दावा, वक्त, हिम्मत, अरजी जैसे अरबी-फारसी के चलते शब्द आए तो ‘नित्य बोले जाने वाले संस्कृत के ऐसे शब्द भी आए, जैसे- विद्या, परीक्षा, ज्ञान, धर्म, अपराध, न्याय, उपाय आदि।’ हिंदी के जिस रूप का स्वप्न प्रेमचंद ने देखा आचार्य शुक्ल ने भी उसी रूप का स्वप्न देखा।

सबसे अधिक उल्लेखनीय यह है कि आचार्य शुक्ल ‘शब्द’ के साथ ‘वस्तु’ को महत्त्व देते हैं। वे शब्द परंपरा के साथ अर्थपरंपरा की बात करते हैं। हमेशा ही ‘शब्द कौन-से हैं’ से अधिक महत्त्वपूर्ण है, ‘अंतर्वस्तु क्या है?’ लेखक किस अर्थ परंपरा से जुड़ा है। उसके काम में धर्मनिरपेक्षता, समावेशिकता और भारतीय जनता के दुख-दर्द के तत्त्व हैं या नहीं। निश्चय ही उस जमाने के सभी साहित्यकार इन मुद्दों पर समान बिंदु पर नहीं हैं।

रामचंद्र शुक्ल की आस्था गांधी के असहयोग आंदोलन से अधिक पंजाब के क्रांतिकारियों में थी। उन्होंने लिखा था, ‘पंजाब में ढाए गए क्रूर नृशंस अत्याचार और इस जुर्म के कर्णधारों का बिना दंड पाए मुक्त घूमना प्रत्येक राष्ट्रभक्त भारतीय के हृदय को गहरे क्रोध से भर देता है।’ (असहयोग और अव्यापारिक श्रेणियां)। उन्होंने राष्ट्रभक्त हिंदू नहीं कहा, ‘राष्ट्रभक्त भारतीय’ कहा। इस लेख के लिखे जाने तक जालियांवाला बाग कांड का बदला नहीं लिया गया था। वस्तुतः स्वाधीनता आंदोलन की कई धाराएं थीं। रामचंद्र शुक्ल पूंजीवाद के प्रति विरोध भाव रखने की वजह से गांधीवादी रास्ते से सहमत नहीं थे। हालांकि वे उद्योगीकरण के विरोधी नहीं थे- ‘हमें अनेक औद्योगिक और बौद्धिक केंद्रों की आवश्यकता है।’ (भारत को क्या करना है)। आचार्य शुक्ल की मुख्य चिंता किसानों को लेकर थी। असहयोग आंदोलन में पूंजीपतियों का भविष्य उज्ज्वल और अव्यापारिक श्रेणियों- किसानों का भविष्य धूमिल नजर आ रहा था- जैसा कि आज वैश्वीकरण में भी।

ये पंक्तियां रामचंद्र शुक्ल की ही हैं, ‘पश्चिम के राष्ट्र अपने को जिससे मुक्त करने की चेष्टा कर रहे हैं, उसी पूंजीवाद की ओर यह एक बढ़ता कदम है। यह पूंजी बटोरने और समाज में व्यक्तिवादी जीवन मूल्यों के क्षुद्र अमेरिकी मानदंड स्थापित करने का प्रयास है।’ यह सही है कि रामचंद्र शुक्ल ने कबीर

और छायावाद के संदर्भ में साहित्यिक अन्यायों की तरह ही गांधी के नेतृत्व में चले आंदोलन का सही मूल्यांकन नहीं किया। लेकिन इस आंदोलन के भीतर से जो वर्ग और प्रवृत्तियां उभर रही थीं, उन पर इनकी टिप्पणी प्रेमचंद द्वारा की गई टिप्पणियों के ही समान है।

मुझे लगता है कि आधुनिक परंपराओं और इनके उन्नायकों पर विचार करते समय जल्दबाजी में या घटावपरक दृष्टिकोण बना कर टिप्पणी से बचने की जरूरत है। निश्चय ही यह सोचकर नहीं कि इस दौर में हम खुद क्या कर रहे हैं। यह सोचकर कि हमें अपनी विकासशील परंपराओं और इनके उन्नायकों को हिंदुत्ववादियों की बौद्धिक झोली में नहीं डालना है, उन महापुरुषों के प्रति एक क्रिटिकल रुख रखते हुए भी यदि ऐसा हुआ, दूसरे नहीं सिर्फ साम्राज्यवादी और हिंदुत्ववादी सफल होंगे- वैचारिक धुंधलका गहरा करने में।